लक्ष्मी नारायण दुबे महाविद्यालय,

मोतिहारी, पूर्वी चम्पारण

सिद्ध साहित्य

डॉ. सन्तोष विश्नोई, सहायक प्रोफेसर,

हिन्दी विभाग

सिद्ध साहित्य पर प्रकाश डालें।

सिद्ध साहित्य आदिकालीन हिन्दी साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंश है जिसका संबंध बौद्ध धर्म की सिद्ध परंपरा से है। सिद्धों ने बौद्ध धर्म के वज्रयान तत्वों का प्रचार करने के लिए जो साहित्य जनभाषा में लिखा वह हिन्दी सिद्ध साहित्य के नाम से जाना जाता है। सिद्ध समर्थक या सिद्ध कवि तंत्र - मंत्र की साधना से ~~सिद्धी~~ ~~या~~ सिद्धि प्राप्त करना चाहते थे। पंडित राहुल सांकृत्यायन के अनुसार सिद्ध कवि भोग में निर्वाण और काया में तीर्थ देखते है, उन्होंने सिद्धों की संख्या 84 मानी है, जिसमे प्रमुख है- सरहपा, सबरपा, लुइपा, कन्हपा, डोम्भिपा आदि।

सिद्धों ने अपनी धार्मिक सांप्रदायिक मान्यताओं को अपने साहित्य के माध्यम से व्यक्त किया। बौद्ध परंपरा से संबंधित होने के कारण वे वैदिक मान्यताओं तथा वर्ण व्यवस्था इत्यादि का तीव्र खंडन करते है, और नैरात्म्य भावना सहज शून्य की साधना और काया योग्य इत्यादि का वर्णन करते है उनका दावा है कि जो पंडित लोग सारे आगम, वेद, पुराण पढ़ चुके है, वे भी परम सत्य को नहीं जानते है। सत्य तो यह है कि बुद्ध या परम सत्य का अस्तित्व हमारे बाहर नहीं बल्कि हमारे भीतर ही है।

पंडिय सअल सत बक्खाणे देहहिं बुद्ध बसंतण जाण अ

अर्थ — जैसे भौंरा पके हुए बेल के बाहर ही घुमता है, रसास्वादन नहीं कर पाता है उसी प्रकार पंडित लोग आगम, वेद, पुराण को ढोते है उनका सार तत्व नहीं जान पाते।

सिद्धों ने बाह्य आडंबरों का विरोध किया है और शून्य पर आधारित साधना प्रक्रिया का समर्पण किया है। और शून्य पर इनका मानना है कि कोई व्यक्ति सिद्ध तभी बन सकता है जब वह अपने मन को हर प्रकार के आकर्षण और मोह से परे ले जाएँ। जहाँ कोई भी इच्छा या राग-द्वेष साधक के शान्त मन को उद्वेलित न कर सके।
सरहपा कहते है कि, जहि मण पवण न संचरइ, रवि ससि णाह पवेस ताहि वढ़, चित विसाम करु सरहे कहिउ उएस
अर्थ – जहाँ मन और पवन की गति भी नहीं है वहीं अपने मन को ले जाओ जहाँ सूर्य चंद्रमा भी प्रवेश न कर सके यही सरहपा का उपदेश है।

सिद्ध कवियों ने जीवन की सहजता एवं स्वभाविकता में दृढ़ विश्वास व्यक्त किया है। सिद्धों ने अन्य धर्मों में व्याप्त कृत्रिमताओं का विरोध किया। उनके मतानुसार सहज सुख से महान् सुख की प्राप्ति होती है। सिद्धों ने गुरु महिमा का पर्याप्त वर्णन किया है। उनके अनुसार गुरु का स्थान वेद और शास्त्रों से ऊँचा है। गुरु की कृपा से ही सहजानन्द की प्राप्ति होती है। जिसने गुरु पविवेश का अमृतपान नहीं किया वह शास्त्रों की मरुभूमि में प्यास से व्याकुल होकर मर जाएगा।

सिद्धों ने साधना मार्ग के रूप में 'पंचमाकर' पद्धति को स्वीकार किया है। पंचमाकर का

अर्थ है - मत्स्य, मंदिरा, मांस, मुद्रा तथा मैथुन इनकी मान्यता थी कि सुखों का चर्म स्तर पर भोग कर ही मन को ऐसी व्यवस्था में लाया जा सकता है। जहाँ वह हर आकर्षण से मुक्त हो जाए। यहाँ सुखों का भोग साधन के रूप में है, साध्य के रूप में नहीं।

शिल्प पक्ष :- सिद्धों का शिल्प पक्ष साहित्यिक सूक्ष्मताओं से युक्त नहीं है क्योंकि ये लोग मूलतः कवि नहीं थे। बल्कि अपने संप्रदाय की मान्यताओं का प्रचार करने के लिए ही साहित्य लिखते थे। इनकी भाषा अर्धमागधी अपभ्रंश थी। जिसमें आगे चलके पूर्वी हिन्दी उपभाषा का विकास हुआ। इनका सारा साहित्य मुक्तक के रूप में है। जो मुख्यतः चर्यापद तथा दोहाकोश के रूप में संकलित है। कहीं-कहीं इन्होंने अपनी आंतरिक अनुभूतियों को एक विशेष प्रतिगात्मक भाषा में व्यक्त किया है, जिसे 'संधा' भाषा कहते हैं। शिल्प में इसका महत्वपूर्ण योगदान छंद के स्तर पर है। इन्होंने कई प्रकार के छंदों का प्रयोग किया। जैसे - दोहा, सोठा, रोला।

वस्तुतः सिद्ध काव्य धारा हिन्दी साहित्य का एक महत्वपूर्ण धारा है। जिसमें धार्मिक बाह्य आडंबरों का विरोध करके एक समता मूलक के रूप में योगदान दिया साथ ही छंद जैसे शिल्पगत तत्वों का भी काफी विकास किया। पंचमकार साधना के रूप में भोगवाद को बढ़ावा देना इनकी एक बड़ी सीमा है।